IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

गीता का निष्काम कर्मयोगः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ0 शिखर वासिनी
सह – प्राध्यापक
दर्शनशास्त्र विभाग, एम०आर०एम० कॉलेज,दरभंगा, बिहार
, E.mail: shikharbasini525@gmail.com

सक्षिप्त सार

कर्मयोगी कर्म का त्याग नहीं करता वह केवल कर्मफल का त्याग करता है और कर्मजनित दुःखों से मुक्त हो जाता है। उसकी स्थिति इस संसार में एक दाता के समान है और वह कुछ पाने की कभी चिन्ता नहीं करता। वह जानता है कि वह दे रहा है और बदले में कुछ माँगता नहीं और इसीलिए वह दुःख के चंगुल में नहीं पड़ता। वह जानता है कि दुःख का बन्धन 'आसक्ति' की प्रतिक्रिया का ही फल हुआ करता है।गीता में कहा गया है कि मन का समत्व भाव ही योग है जिसमें मनुष्य सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय, संयोग–वियोग को समान भाव से चित्त में ग्रहण करता है। कर्म–फल का त्याग कर धर्मनिरपेक्ष कार्य का सम्पादन भी पूजा के समान हो जाता है। संसार का कोई कार्य ब्रह्म से अलग नहीं है। इसलिए कार्य की प्रकृति कोई भी हो निष्काम कर्म सदा ईश्वर को ही समर्पित हो जाता है। पुनर्जन्म का कारण वासनाओं या अतृप्त कामनाओं का संचय है। कर्मयोगी कर्मफल के चक्कर में ही नहीं पड़ता, अतः वासनाओं का संचय भी नहीं होता। इस प्रकार कर्मयोगी पुनर्जन्म के बन्धन से भी मुक्त हो जाता है।

शब्द संकेतः कर्मयोगी, पुनर्जन्म, वासना, बन्धन तथा मुक्त ।

प्रस्तावनाः

वास्तव में कर्मयोग ही वह योग है जिसके माध्यम से हम अपनी जीवात्मा से जुड़ पाते हैं। कर्मयोग हमारे आत्मज्ञान को जागृत करता है। इसके बाद हम न केवल अपने वर्तमान जीवन के उद्देश्यों को बल्कि जीवन के बाद की अपनी गति का पूर्वाभास प्राप्त कर सकते हैं।इस योग में कर्म के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति की जाती है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। गृहस्थ और कर्मठ व्यक्ति के लिए यह योग अधिक उपयुक्त है। हममें से प्रत्येक किसी न किसी कार्य में लगा हुआ है, पर हममें से अधिकांश अपनी शक्तियों का अधिकतर भाग व्यर्थ खो देते हैंय क्योंकि हम कर्म के रहस्य को नहीं जानते। जीवन के लिए, समाज के लिए, देश के लिए, विश्व के लिए कर्म करना आवश्यक है।किन्तु यह भी एक सत्य है कि दुःख की उत्पत्ति कर्म से ही होती है। सारे दुःख और कष्ट आसक्ति से उत्पन्न हुआ करते हैं। कोई व्यक्ति कर्म करना चाहता है, वह किसी मनुष्य की भलाई करना चाहता है और इस बात की भी प्रबल सम्भावना है कि उपकृत मनुष्य कृतघ्न निकलेगा और भलाई करने वाले के विरुद्ध कार्य करेगा। इस प्रकार सुकृत्य भी दुःख देता है। फल यह होता है कि इस प्रकार की घटना मनुष्य को कर्म से दूर भगाती है। यह दुःख या कष्ट का भय कर्म और शक्ति का बड़ा भाग नष्ट कर देता है।

कर्मयोग सिखाता है कि कर्म के लिए कर्म करो, आसक्तिरहित होकर कर्म करो। कर्मयोगी इसीलिए कर्म करता है कि कर्म करना उसे अच्छा लगता है और इसके परे उसका कोई हेतु नहीं है। कर्मयोगी कर्म का त्याग नहीं करता वह केवल कर्मफल का त्याग करता है और कर्मजनित दुःखों से मुक्त हो जाता है। उसकी स्थिति इस संसार में एक दाता के समान है और वह कुछ पाने की कभी चिन्ता नहीं करता। वह जानता है कि वह दे रहा है और बदले में कुछ माँगता नहीं और इसीलिए वह दुःख के चंगुल में नहीं पड़ता। वह जानता है कि दुःख का बन्धन 'आसक्ति' की प्रतिक्रिया का ही फल हुआ करता है।गीता में कहा गया है कि मन का समत्व भाव ही योग है जिसमें मनुष्य सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय, संयोग–वियोग को समान भाव से चित्त में ग्रहण करता है। कर्म–फल का त्याग कर धर्मनिरपेक्ष कार्य का सम्पादन भी पूजा के समान हो जाता है। संसार का कोई कार्य ब्रह्म से अलग नहीं है। इसलिए कार्य की प्रकृति कोई भी हो निष्काम कर्म सदा ईश्वर को ही समर्पित हो जाता है। पुनर्जन्म का कारण वासनाओं या अतृप्त कामनाओं का संचय है। कर्मयोगी कर्मफल के चक्कर में ही नहीं पड़ता, अतः वासनाओं का संचय भी नहीं होता। इस प्रकार कर्मयोगी पुनर्जन्म के बन्धन से भी मुक्त हो जाता है।

गीता का कर्मयोगः

श्रीमद्भगवद गीता ने सम्पूर्ण विश्व का मार्गदर्शन किया। कर्म, ज्ञान योग, मोक्ष, निर्भयता इत्यादि तमाम गुणों का अद्वितीय समन्वय है फिर भी कर्म पर गीता के द्वितीय अध्याय मे ं विशेष जोर देकर व्याख्यायित किया गया है। गीता के निष्काम कर्म के अनुसार कोई भी जीव बिना कर्म किए एक पल भी नही रह सकता चाहे व योगी हो या सामान्य पुरूष, क्यों कि सांस लेना भी एक कर्म है। प्रत्येक व्यक्ति को उसे उसके कर्म का फल भी अवश्य मिलता है तो फल की चिन्ता किये बिना ही कर्म करें। कर्म के अनुसार ही व्यक्ति का जीवन व भविष्य का निर्धारण उसका कर्म ही करता है, कर्म ही प्रधान है। निष्काम कर्म को लेकर गीता के द्वितीय अध्याय में कहा गया है :– ''**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनः। मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सडोडस्त्व कर्माणि।**'' अर्थात् कर्म करने में ही तेरा अधिकार है फल में कभी नहीं ऐसा समझ कि फल है ही नहीं, फल की वासना वाला भी मत हो और कर्म करने में तेरी अश्रद्धा भी न हो। भगवान् श्रीकृष्ण पहली बार 39वें श्लोक में कर्म शब्द का प्रया ेग करते है, किन्तु यह नही ं बताते है कि वह कर्म है क्या और उसे करें कैसे? तब प्रश्न उठता है कि कर्म क्या है :– सम्पूर्ण गीता की रचना ही निष्क्रिय और कि कर्तव्यविमू उसी प्रकार शुभ या अच्छे कर्मो का फल अच्छा व बुरें कमा ं का फल बुरा होता है। कर्म को लेकर ''कृतप्रणाश' व 'अकृताभ्युपगम्' की अवधारणा है, अर्थात् कृतप्रणाश के अनुसार किये हुए कर्मो का फल कभी नष्ट नहीं होता और 'अकृताभ्युपगम्' के धारणा के अनुसार बिना किये हुए कर्मो का फल भी नहीं प्राप्त होता है। अगर हम सम्पूर्ण भारतीय दर्शन के केवल मूल रूपों में कर्म को जानने का प्रयास करे तो विभिन्न दर्शनों ने इसे विभिन्न प्रकार का बताया है। कर्म–सिद्धान्त सभी दर्शनों की कही न कही ं आधारशिला भी है जो उसे व्यवहारिक भी बनाती है, भारतीय दर्शन में इसे कई अन्य सिद्धान्त से भी अधिक अच्छा, व्यवहारिक मूल माना जाता है।

कर्मयोग का प्रतिपादन गीता में विशद् से हुआ है। भारतीय दर्शन में कर्म, बंधन का कारण माना गया है। किंतु कर्मयोग में कर्म के उस स्वरूप का निरूपण किया गया है जो बंधन का कारण नहीं होता। योग का अर्थ है समत्व की प्राप्ति (समत्वं योग उच्यते)। सिद्धि और असिद्धि, सफलता और विफलता में सम भाव रखना समत्व कहलाता है। योग का एक अन्य अर्थ भी है। वह है कर्मों का कुशलता से संपादन करना (योगः कर्मसु कौशलम)। इसका अर्थ है, इस प्रकार कर्म करना कि वह बंधन न उत्पन्न कर सके। अब प्रश्न यह है कि कौन से कर्म बंधन उत्पन्न करते हैं और कौन से नहीं? गीता के अनुसार जो कर्म निष्काम भाव से ईश्वर के लिए जाते हैं वे बंधन नहीं उत्पन्न करते। वे मोक्षरूप परमपद की प्राप्ति में सहायक होते हैं। इस प्रकार कर्मफल तथा आसक्ति से रहित होकर ईश्वर के लिए कर्म करना वास्तविक रूप से कर्मयोग है और इसका अनुसरण करने से मनुष्य को अभ्युदय तथा निःश्रेयस की प्राप्ति होती है।

गीता के अनुसार कर्मों से संन्यास लेने अथवा उनका परित्याग करने की अपेक्षा कर्मयोग अधिक श्रेयस्कर है। कर्मों का केवल परित्याग कर देने से मनुष्य सिद्धि अथवा परमपद नहीं प्राप्त करता। मनुष्य एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रहता। सभी अज्ञानी जीव प्रकृति से उत्पन्न सत्व, रज और तम, इन तीन गुणों से नियंत्रित होकर, परवश हुए, कर्मों में प्रवृत्त किए जाते हैं। मनुष्य यदि बाह्य दृष्टि से कर्म न भी करे और विषयों में लिप्त न हो तो भी वह उनका मन से चिंतन करता है। इस प्रकार का मनुष्य मूढ़ और मिथ्या आचरण करनेवाला कहा गया है। कर्म करना मनुष्य के लिए अनिवार्य है। उसके बिना शरीर का निर्वाह भी संभव नहीं है। भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं कि तीनों लोकों में उनका कोई भी कर्तव्य नहीं है। उन्हें कोई भी अप्राप्त वस्तु प्राप्त करनी नहीं रहती। फिर भी वे कर्म में संलग्न रहते हैं। यदि वे कर्म न करें तो मनुष्य भी उनके चलाए हुए मार्ग का अनुसरण करने से निष्क्रिय हो जाएँगे। इससे लोकस्थिति के लिए किए जानेवाले कर्मों का अभाव हो जाएगा जिसके फलस्वरूप सारी प्रजा नष्ट हो जाएगी। इसलिए आत्मज्ञानी मनुष्य को भी, जो प्रकृति के बंधन से मुक्त हो चुका है, सदा कर्म करते रहना चाहिए। अज्ञानी मनुष्य जिस प्रकार फलप्राप्ति की आकांक्षा से कर्म करता है

उसी प्रकार आत्मज्ञानी को लोकसंग्रह के लिए आसक्तिरहित होकर कर्म करना चाहिए। इस प्रकार आत्मज्ञान से संपन्न व्यक्ति ही, गीता के अनुसार, वास्तविक रूप से कर्मयोगी हो सकता है।

निष्काम कर्म में ही दो परस्पर विरोधी गुणों प्रवृत्ति व निवृत्ति का समन्वय होता है प्रवृत्ति का मूल कर्म का आदर्श है और निवृत्ति मूल वैराग्य का आदर्श है। गीता के प्रत्येक व्यक्ति के कर्म का सम्पादन करने का निवेदन या आदर्श प्रस्तुत करती है किन्तु कर्म–फल में आसक्ति का भाव न रखना ही इसका मूल रूप है। निष्काय कर्म योगी की सुख–दुख लाभ–हानि जय–पराजय से बहुत उपर होकर कार्य करता है। गीता में कहा ग्रया है– सुख दुःखे समे कृत्वा, लाभा लाभौ जया जयै। तता युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि'' गीता 2/38 अर्थात श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है कि सुःख दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय को समान समझकर तू युद्ध के लिए तैयार हो, युद्ध करने से तू पाप को प्राप्त नहीं होगा। अर्थात् सुःख में सर्वस्व और दुःख में भी देवत्व है लड़ने या निष्काम करने में ही दोनों वस्तुएँ है। लड़ोगे तो पाप अथा त् आवागमन को प्राप्त नहीं ही होंगे अतः तू निष्काम भाव से युद्ध के लिए तैयार होगे।

अनासक्त भाव से कर्म करना 'कर्म योग'' है। कर्म ही पूजा है कर्म अर्थात कार्य करना। यह कार्य शारीरिक व मानसिक रूप से हो सकता है। हम जो करते है, सोचते है या कहते है। इस प्रकार सबका प्रभाव बनता है जो एक निश्चित समय पर प्रतिफल के रूप में मिलता है और जो प्रतिफल मिलता है उसे हम भाग्य कहते है जो पूर्व कर्म होते है वे संस्कार के रूप में एकत्र होते है और यह संस्कार हमें कर्मफल के रूप में प्राप्त होता है। यदि हम वर्तमान समय में फलों की आसक्ति से रहित होकर कर्म करते है तो चित्त में संस्कार नही होते है। तथा संस्कारों के दग्धबीज होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार कर्मयोग के द्वारा मोक्ष सम्भव होता है। कर्म करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है तथा कर्म के बिना मनुष्य का जीवित रहना असम्भव है कर्म करने की इस प्रवृत्ति के सम्बध में गीता में कहा गया है – **नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणै**ः। गीता 3/5। इस प्रकार कर्म सभी मानव का प्रकृतिजनित गुण होता है मनुष्य को न चाहते हुए भी कुछ न कुछ कर्म करते होते है। इस प्रकार कर्म बन्धन का कारण होता है। कर्मयोग की साधना में अभ्यासरत साधक धीरे–धीरे सभी कर्मो को भगवान को अर्पित करने लगता है और साधक में भक्तिभाव उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में साधक जो भी कर्म करता है वह परमात्मा को अर्पित करते हुए करता है। साधक अपनी श्रद्धा बनाए रखते हुए उत्साह के साथ कर्म करता है। इस सम्ब ध में गीता में कहा गया है – **यत्करोषि यदन्नासि यज्जुद्येषि ददासि यत। यत्तपस्यासि कौन्तेय तत्कुरूएव मदर्पणम्**।। गीता 9/27 अर्थात हम जो भी कर्म करते है, जो खाते है, जो हवन करते है, जो दानादि देते है, जो तप करते है, वह उस परमात्मा को अर्पण करना चाहिए। ईश्वर के प्रति समर्पित कर्म व उसके फल सम्बधं को बताते हुए कहा गया है – **ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः। लिप्यते न स पापेन पद्यपत्र मिवाम्भसा**।। गीता 5/11 अर्थात ब्रह्म को अनासक्ति पूर्वक कर्म करने वाला उसके फल से वैसे ही अलग रहता है जैसे जल में कमल का पत्ता। कर्मयोग की साधना में रत व्यक्ति में उच्च अवस्था की स्थिति आने पर स्वयं कर्ता की भावना समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में साधक अनुभव करता है कि मेरे द्वारा जो भी कर्म किये जा रहे है। उन सबको करने वाले ईश्वर ही है। इस प्रकार से साधक कर्म करता हुआ भी बन्धन से मुक्त रहता है उसके द्वारा किये गए कर्म में किसी भी प्रकार के स स्कार उत्पन्न नही होते हैं इस प्रकार से कर्म मुक्ति को दिलाने वाले होते है।

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा :

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा के क्रम में विभिन्न आचार्यों द्वारा लिखित पुस्तकों का अवलोकन किया गया है जिसमें–

सरस्वती, विज्ञानानन्द (1998).योग विज्ञान मे कहना है कि परमात्मा स्वंय सृष्टि का नियामक संचालक होते हुए भी हमें विवेक बुद्धि देकर हमें कर्मों का अधिष्ठाता बनाया है। हमे कर्मकरने की पूरी छूट है। चाहे तो हम सत्कर्म का मार्ग अपनाकर आत्मिक प्रगति की ओर बढ सकते है अथवा दुष्कर्मों में प्रवृत्तहोकर अपनी अवनति का मार्ग प्रशस्त कर लें। भले बुरे कर्मो के लिए पूर्ण रूपेण उत्तरदायी मनुष्य ही है। मन की अपेक्षायदि अपनी गतिविधियों को आत्मप्रेरणा के अनुरूप परिचालित किया जाए तो हमें कभी दुष्कर्मों की ओर बढ ने का अवसर ही न प्रस्तुत हो ।

गोयन्दका,जयदयाल (2015) श्रीमदभगवतगीता मे कहना है कि अनासक्त कर्मयोग शब्द स्वंय भी अपने वास्तविक आशय को प्रकट करता है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है–अनासक्त और कर्मयोग। अनासक्त का अर्थ है राग, मोह, प्रीति न रखना। अंहकार की उत्पति आसक्त से होती है। दूसरा शब्द है कर्मयोग। गीता इसकी व्याख्या करती है, ''योगः कर्मसु कौशलम''– कर्म में कुशलता ही योग है। कार्य कुशल वही हो सकता है जिसे उचित अनुचित कर्मों के बीच स्पष्ट अन्तर का बोध हो ।

रावत, अनुजा (2018) योग और योगी मे कहना है कि गीता में कहा गया है कि मन का समत्व भाव ही योग है जिसमें मनुष्य सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय, संयोग–वियोगको समान भाव से चित्त में ग्रहण करता है। कर्म–फल का त्याग कर धर्मनिरपेक्ष कार्य का सम्पादन भी पूजा के समान हो जाता है ।

सरस्वती, शिवानन्द (2001) कर्मयोग साधना मे कहना है कि कर्मयोगी कर्म का त्याग नहीं करता वह केवल कर्मफल का त्याग करता है और कर्मजनित दुःखों से मुक्त हो जाता है। उसकीस्थिति इस संसार मे एक दाता के समान है और वह कुछ पाने की कभी चिन्ता नहीं करता। वह जानता है कि वह दे रहा है और बदले में कुछ माँगता नहीं और इसीलिए वह दुःख के चंगुल में नही पड़ता। वह जानता है कि दुःख का बन्धन 'आसक्ति'की प्रतिक्रिया का ही फल हुआ करता है।

अध्ययन पद्धति :

यह शोध आलेख मुख्य रूप से वर्णन एवं विश्लेषणात्मक एवं ऐतिहासिक आलोचनात्मक अध्ययन पद्धति पर आधारित है। वर्त्तमान अध्ययन गीता का निष्काम कर्मयोग के विविध पक्षों के अन्वेषण से संबंधित है अतः यह शोध आलेख मुख्य रूप से द्वैतियक स्रोत पर आधारित है। इस अध्ययन के लिए मूल अध्ययन स्रोत पत्र –पत्रिकाओं एवं दस्तावेज तथा विभिन्न आचार्यों द्वारा सम्पादित पुस्तकों द्वारा लिया है।

कर्मयोग की साधना से साधक के लौकिक व पारमार्थिक दोनो पक्षो का उत्थान होता है। कर्म योग के मार्ग से ही साधक गृहस्थ जीवनयापन करते हुए भी साधना कर सकता है, तथा मुक्ति प्राप्त कर सकता है। कर्म के भेद तथा विभिन्न ग्रन्थों व शास्त्रों में कर्मयोग का स्वरूप – कर्म का विभाजन अलग–अलग शास्त्रों में अलग–अलग प्रकार से किया गया है। वेदों में कर्म मुख्य रूपसे दो है – विहित कर्म – विहित कर्म अर्थात अच्छे कर्म, सुकृत कर्म। विहित कर्म के भी 4 भेद है – प. नित्य कर्म – नित्य कर्म का अर्थ है प्रतिदिन किये जाने वाले कर्म जैसे – सन्ध्यापूजा, अर्चना, वन्दना इत्यादि। पप. नैमित्तिक कर्म – जो कर्म किसी प्रायोजन के लिए किऐ जाते है उदाहरण के लिये किसी त्यौहार या पर्व आ जाने पर अनुष्ठान किसी की मृत्यु हो जाने पर श्राद्ध, तर्पण इत्यादि जैसे पुत्रक के जन्म होने पर जातकर्म, बडे होने पर यज्ञोपवीत इत्यादि। पपप. काम्य कर्म – ऐसे कर्म जो किसी कामना या किसी प्रयोजन के लिये किये जाते है जैसे नौकरी प्राप्ति के लिए, पुत्र की प्राप्ति के लिये, यज्ञ, वर्षा को रोकने के लिए हवन या अनुष्ठान, पुण्यफल की प्राप्ति की इत्यादि ये काम्य कर्म है। पअ. प्रायश्चित कर्म – अगर व्यक्ति से कोई अनैतिक कार्य या पाप हो जाये तो उसके प्रायश्चित के लिये जो कर्म करता है। उसे प्रायश्चित कर्म कहते है। तथा जन्मजन्मान्तरों के पापों का क्षय करने के लिये तपश्चर्या इत्यादि प्रायश्चित कर्म कहलाते है। निषिद्ध कर्म – निषिद्ध कर्म अर्थात जो कर्म शास्त्र के अनुकूल नही है। चोरी, हिंसा, झूठ, व्याधिचार इत्यादि कर्म निषिद्ध कर्म है। जब हम कोई कर्म करते हैं तब हमारा मन (आत्म, तत्व) उसे करने या न करने के लिए प्रेरित करता है। कोई व्यक्ति उस आत्मा की आवाज को सुनकर कर्म करता है और कोई अनसुना करता है। अगर आत्मा की आवाज अर्थात ईश्वर का भय न करते हुए जो कर्म करते है वह निषिद्ध कर्म है। इस प्रकार वेदों मे 2 प्रकार के कर्म का वर्णन है श्रीमदभगवद् गीता में वर्णित कर्मयोग – श्रीमदभागवत गीता में कर्मयोग का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। गीता के तृतीय अध्याय का नाम कर्मयोग नामक अध्याय है इस अध्याय में श्रीकृष्ण, अर्जुन को कर्मयोग का संदेश देते है। जब अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछत है कि हे जर्नादन – जब आपको कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ मान्य है। तो मुझे इस भयंकर कर्म में क्योंकि लगा रहे है? तब भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि इस संसार में दो प्रकार की निष्ठा है जिसमे श्रीकृष्ण सांख्योग कीनिष्ठा तो ज्ञानयोग से और योगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है। **लोकेऽस्मिन्द्विधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन सगंरव्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्**।। 3/3, भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि जो पुरूष मन से इन्द्रिया को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है। वही श्रेष्ठ है। **यस्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन। कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते** 3/6।। श्रीकृष्ण कहते है कि है अर्जुन! तू शास्त्रविहित कर्मो को कर क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी नही सिद्ध होगा। **नियतं कुरू कर्म त्व कर्म ज्यायों ह्यकर्मणः। शरीर यात्राणि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः** 3/8।। श्रीकृष्ण श्रेष्ठ कर्म के विषय में कहते है कि यज्ञ से निमित्त किये जाने वाले कर्मो से अतिरिक्त दूसरों में लगा हुआ ही यह मनुष्य समुदाय कर्मो से बँधता है। इसलिये हे अर्जुन! तू आसक्ति रहित होकर उस यज्ञ के निमित्त ही भलीभाँति कर्तव्यकर्म कर। **यज्ञार्थत्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थ कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर**।। 3/9, श्रीकृष्ण कहते है कि आसक्ति रहित होकर सदा कर्तव्य कर्म को भलीभाँति करना चाहिये क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। **तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचन्व। असक्तो ह्यचरन्कर्म परमाप्नोति पुरूषः**।। 6/19, श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि – हे अर्जुन! मुझ अन्तर्यामी परमात्मा में लगे हुए चित्तद्वारा सम्पूर्ण कर्मो की मुझमें अर्पण करके आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित होकर युद्ध कर। **मयि सर्वाणि कर्माणि सन्नयस्याध्यात्मचेतस। निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धयस्व विगतज्वरः**।। 3/30, इसके पश्चात श्रीकृष्ण कहते है कि – जो कोई मनुष्य दोषदृष्टि से रहित और श्रद्धायुक्त होकर मेरे इस मत का सदा अनुसरण करते है वे भी सम्पूर्ण कर्मो से छूट जाते है। **ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः। श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्माभिः**।। 3/31। इस प्रकार श्रीकृष्ण सम्पूर्ण कर्मो को अर्पित करने की बात कहते है। क्योंकि जब हम कर्मफल को ईश्वर को समर्पित कर देते है। तो सम्पूर्ण कर्म बंन्धन से मुक्त हो जाते है। – गीता में कर्म की विस्तार से चर्चा की गयी है एव कर्म की गति गहन बतलायी गयी है। ''**गहना कर्मणो गति**'' कृष्ण कहते है कि कर्म को ही जानना चाहिये, अकर्म को भी जाननाचाहिये।

इस प्रकार गीता में कर्म के जिन प्रकारों की चर्चा आयी है वे है –

- कर्म, अकर्म, विकर्म
- आसक्त एवं अनासक्त कर्म एवं निष्काम कर्म
- नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य कर्म

वेद विहित कार्य को कर्म कहते है अतः गीता के अनुसार शास्त्रविहित कर्मा को ही कर्म कहा जाता है। अकर्म का तात्पर्य है कर्म का अभाव यानी तुष्णीभाव। इस तुष्णीभाव को ही अकर्म कहा गया है। और विकर्म का अभिप्राय है **''विगतः कर्मः यस्य स विकर्मः''** जो विहित कर्म निकल गया हो अर्थात जो शास्त्र विहित कर्म नही है। अविहित यानी निषिद्ध(पाप) कर्म है वही विकर्म है इस प्रकार से गीता में तीन प्रकार के कर्म बताये गये है। यदि कर्ता की कर्मफल मे ं आसक्ति है तो वह आसक्त कर्म यदि कर्मफल में आसक्ति नही है। तथा निष्काम भाव से जो कर्म करते है उसे अनासक्त या निष्काम कर्म कहा जाता है। प्रतिदिन किये जाने वाले कर्म नित्य कर्म कहलाते है तथा जो कर्म किसी प्रयोजन से किये जाते है वे नैमित्तिक कर्म कहलाते है तथा व्यक्ति से कोई अनैतिक कार्य या पाप हो जाये तो उसे प्रायश्चित कर्म कहते है तथा ऐसे कर्म जो किसी कामना या किसी प्रयोजन के लिये किये जाते है वे काम्य कर्म कहलाते है। इस प्रकार श्रीमदभगवतगीता में कर्मो का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है इसमें बन्धन में बाँधने वाले तथा बन्धन से मुक्त करने वाले कर्मो के विषय में विस्तार से बताया गया है। अतः गीता कर्मयोग का मुख्य कारण है। कर्मयोग का महत्व – कर्मयोग हर काल, परिस्थिति तथा जीवन के हर क्षेत्र में अत्यन्त आवश्यक है। कर्मयोग, एक प्रकार का श्रेष्ठ या ेग है। जो कर्म के गूढ रहस्य का प्रतिपादन करता है। यह कर्मबन्धन से ऊपर उठकर भव सागर से पार होने का साधन है। कर्मयोग हर सृष्टि से महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में कर्मयोग जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। यह समाज व राष्ट्र के उत्थान के लिये भी अत्यन्त अनिवार्य है। हमेशा मनुष्य आलस्य तथा निस्कर्मण्यता के कारण कर्म में प्रवृत्त नही हो पाता है और यदि कर्म में प्रवृत्त हो गया तो भी उसके फल के प्रति आसक्त रहता है। आसक्ति के कारण वह अपने कार्य में सम्पूर्ण समर्पित भाव से प्रवृत्त नही हो पाता है। इसी कारण से वह अपने आत्मविकास तथा समाज व राष्ट्र के विकास में योगदान नही कर पाता है।

अतः कर्मयोग, आत्मविकास व राष्ट्र के विकास हेतु अत्यन्त आवश्यक है। कर्मयोग ज्ञान योग के सभी हजारों गुणा अधिक प्रशस्त है क्योंकि ज्ञान योग की सिद्धि कर्मयोग के द्वारा ही होती है। यह ब्रह्म भी कर्मयोग से ही उत्पन्न होते है। कर्मयोग के बिना तो ज्ञानयोग की भी सत्ता नही है। अतः ज्ञानयोग में प्रवृत्त होने के लिये भी कर्म करना आवश्यक है। जिस प्रकार का हम कर्म करते है उसी तरह हमारे संस्कार बनते है और संस्कार हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्धारण करता है। अच्छे कर्म करने से अच्छे संस्कार तथा बुरे कर्म करने से बुरे संस्कार चित्त पर पड़ते है। अतः कर्म हमारे जन्मजन्मान्तरों से साथ रहते है। इस प्रकार वर्तमान क्षण में श्रेष्ठ कार्यो में प्रवृत्त होना आवश्यक है। गीता में कहा गया है कि मनुष्य बिना कर्म किये एक क्षण भी नही रह सकता है। अर्थात कर्म हमेशा हमारे साथ होता है तथा यह हमें शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक रूप से प्रभावित करता है। कर्म हमेशा संस्कारो ं के रूप मे मनुष्य के पास कर्म करने की स्वतंत्रता है। यह अच्छे व बुरे कर्म हो सकते है। मनुष्य के पास एक सुअवसर है उच्च अवस्था को प्राप्त करने का। इसलिये कर्म का महत्व समझकर, समय रहते हुये दिव्य कर्मो को दिव्य भावों के साथ करना आवश्यक है। आसक्ति रहित व निष्काम भाव से कर्म करने से कर्मयोग ही जीवन के उच्चतम लक्ष्य मोक्ष का साधन बन जाता है। इस प्रकार कर्मयोग का महत्व अत्यन्त अधिक है। उपसंहार तथा निष्कर्ष – कर्मयोग, जीवन में वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने का श्रेष्ठ साधन है। हम जो भी कर्म करते है वे अच्छे बुरे कर्म संस्कार रूप में एकत्र होते रहते है। ये संस्कार हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा जन्म–मरण को निर्धारित करते है। जब हम कर्मफल के प्रति अनासक्त भाव से कर्म करते है तो संस्कार नही बनते है। व कर्माशय में संस्कार नही रहने से मनुष्य इस जरा मरण के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है इस प्रकार आसक्तियुक्त कर्म बन्धनकारक तथा अनासक्त कर्म मोक्षदायक होता है।

सारांशः

अतः हमें कर्मफल के प्रति अनासक्त होकर तथा सम्पूर्ण कर्म को ईश्वर के प्रति समर्पित होकर करना चाहिए। इस प्रकार मनुष्य कर्मयोग के द्वारा मोक्ष व कैवल्य को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार मनुष्य जब कर्मयोग में प्रवृत्त होता है तो वह आत्मोन्नति को प्राप्त करता है, तथा समाज व राष्ट्रहित में भी प्रवृत्त होता है। अतः न केवल आत्मोत्थान के लिये अपितु समाज व राष्ट्र की उन्नति व गौरव के लिये भी कर्मयोगी मनुष्यों की वर्तमान समय में अत्यन्त आवश्यकता है। अतः सभी मनुष्यों को कर्मयोग के मर्म को समझकर कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये। वर्तमान में जो भय, आतंक, डर का जो वातावरण है उसे भी निष्काम दृष्टि से कर्म करके कम कर सकते है और वातावरण पर पड़ रहे प्रतिकूल प्रभाव पर भी हम नियंत्रण कर सकते है। यही मोक्ष व मुक्ति का मार्ग मानव प्रजाति व सम्पूर्ण सृष्टि के लिए दिशात्मक रूप होगा। जब कर्म सभी के कल्याण के लिए किये जाते है जिसमें खुद का स्वार्थन हो तो वह कर्म, कर्मयोग हो जाता है। कर्मयोग सम्पूर्ण जगत के कल्याण के लिए है जब कि योग खुद या स्वयं के लिए है। यह आत्मिक स्वयं का होता है। निष्काय कर्म योग सम्पूर्ण अश ुद्धियों को दूर करता है और यही मुक्ति/मोक्ष द्वार है।

सन्दर्भ सूची

1. सरस्वती, विज्ञानानन्द (1998).योग विज्ञान, ऋषिकेशः योग निकेतन ट्रस्ट.पृ.सं.64
2. गोयन्दका,जयदयाल (2015) श्रीमदभगवतगीता,गोरखपुरः गीताप्रेस, पृ.47–60,84–98
3. स्वामी विवेकानन्द (2014), कर्मयोग, नागपुरः रामकृष्ण मठ,
4. रावत, अनुजा (2018) योग और योगी, नई दिल्ली, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, पृ.117–124.
5. उपाध्याय, बलदेव (1997) भारतीय दर्शन, वाराणसीः शारदा मन्दिर. पृ.62
6. बसन्त कुमार लाल (2001)समकालीन भारतीय दर्शन, दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 43–44.
7. सरस्वती, शिवानन्द (2001) कर्मयोग साधना, उत्तरांचलः दिव्य जीवन संघ
8. आर्य,सतीश (2002) कर्म एवं कर्मफल मीमांसा, नई दिल्लीःवेद विश्वायतन. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, वाराणसीः मोती लाल बनारसीदास, पृ.71.
9. लोकमान्य तिलक, गीता रहस्य, पृ. 55,284
10. ''विवेकानंद, स्वामी. ''कर्मयोग''. मूल से 19 अगस्त 2019 को पुरालेखित.